सघन खेती में उपयोगिता शून्य जुताई की

तेज राम बंजारा[1] और **सुशील कुमार**[2]

"आज हम देश की 125 करोड़ लोगों की आबादी के लिए खाद्यान्न आपूर्ति करने में सक्षम हैं। आने वाले समय में तेजी से बढ़ती हुई इस जनसंख्या के लिए खाद्यान्न आपूर्ति कर पाना निस्संदेह एक बड़ी चुनौती होगी। इसके पीछे कारण है–कृषि के अंतर्गत लगातार घटता क्षेत्रफल, तीव्र औद्योगिकीकरण एवं कृषि के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए भूमि की बढ़ती आवश्यकता। ऐसी परिस्थिति में खाद्यान्न आपूर्ति हेतु प्रति इकाई क्षेत्रफल में उत्पादन में वृद्धि करनी होगी और यह तभी संभव है जब किसान उन्नत किस्मों के बीजों और वैज्ञानिक सस्य तकनीकों के उपयोग के साथ-साथ सघन एवं टिकाऊ खेती को अपनाएं।"

एक वर्ष में एक ही खेत में दो या दो से अधिक बार फसलों को उगाना सघन खेती कहलाता है। बहुफसली खेती से अभिप्राय भूभाग की उत्पादन क्षमता का अधिकतम उपयोग करना है। इसमें एक ही खेत से एक वर्ष में दो-तीन या चार फसलें उगाकर अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जाता है। बहुफसली कार्यक्रम अपनाने से हम प्रति इकाई क्षेत्र व प्रति इकाई समय में उत्पादन ही नहीं अपितु बहुत से बेरोजगार लोगों को इस कार्यक्रम में लगाकर बेरोजगारी की समस्या को काफी हद तक सुलझा सकते हैं।

[1]सस्य विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश); [2]भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, प्रादेशिक अनुसंधान संस्थान, भुज-370105 (गुजरात)

बहुफसली कार्यक्रम की मूलभूत आवश्यकताएं

बहुफसली कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाने के लिए अग्रलिखित आधारभूत आवश्यकताएं हैं:

- भूमि की भौतिक एवं रासायनिक दशा उत्तम होनी चाहिए। मृदा सतह समतल, मृदा गठन उत्तम, बेहतर वायु संचार, पानी को रोकने की क्षमता, उत्तम पारगम्यता, लवणरहित एवं भूमि जीवांश से धनी व उर्वर होनी चाहिए, ताकि सघन खेती को सहन कर सके।
- जहां पर सघन खेती करनी है वह क्षेत्र सूखा व बाढ़ आदि से प्रभावित न हो और अगर ऐसी कोई समस्या क्षेत्र में है तो उसके समाधान की तैयारी रखनी चाहिए। भूमि बहुवर्षीय खरपतवार जैसे कांस, दूब व मोथा आदि से प्रभावित न हो।
- किसान को फसलों के एलीलोपैथिक प्रभाव और साथ ही उसमें उगने वाले खरपतवारों की भी जानकारी होनी चाहिए।
- सघन खेती उन्हीं स्थानों पर सफलतापूर्वक हो सकती है, जहां वांछित मात्रा में समय पर सिंचाई की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध हो। फसल की समय पर बुआई कर उनकी उत्पादन क्षमता का भरपूर लाभ लेने के लिए निजी सिंचाई साधन का होना आवश्यक है।

भूपरिष्करण का प्रारंभ

भारत में शून्य भूपरिष्करण की शुरूआत सन् 1980 में हुई थी। इम्पीरियल कैमिकल इंडस्ट्री द्वारा पैराक्वाट नामक शाकनाशी के प्रचार के साथ शून्य भूपरिष्करण का विस्तार हुआ। शून्य भूपरिष्करण से गेहूं की बुआई फैलेरिस माइनर नामक खरपतवार के नियंत्रण में सहायक होती है। अब हरियाणा एवं पंजाब में इस तकनीक का उपयोग वृहत स्तर पर किया जा रहा है, जिससे एक दशक में लगभग 18 प्रतिशत तक गेहूं की उपज में वृद्धि आकलित की गई है। 3-4 वर्षों तक लगातार शून्य भूपरिष्करण अपनाने से खरपतवार की समस्या एवं खरपतवारनाशी की आवश्यकता में कमी आती है। भारत के उत्तरी राज्यों जैसे-उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं हरियाणा में खरीफ फसलों की कटाई के बाद रबी की फसल जैसे-गेहूं अलसी, सरसों आदि की बुआई के लिए शून्य भूपरिष्करण को अपनाया जा रहा है।

- सघन खेती में सामान्य की तुलना में अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। इसलिए आजकल खेती के लिए श्रमिकों का मिलना दुर्लभ होता जा रहा है। अत: इस कार्यक्रम को अधिक व्यापक बनाने के लिए श्रमिक अभाव क्षेत्रों में कृषि यंत्रों का विकास व प्रचार करना होगा।
- सघन खेती की सफलता कृषि साधनों की समय पर उपलब्धता पर निर्भर करती है। अत: कृषि साधनों की उपलब्धता में जो रुकावटें हैं, उन पर ध्यान देकर साधनों को भरपूर मात्रा में सरलतापूर्वक उपलब्ध कराने की कोशिश करनी चाहिए।
- एक खेत में अधिक से अधिक फसल उगाने से कई प्रकार के रोग, कीट, भूमि की उत्पादकता, फसल पोषण आदि अनेक समस्याएं किसान के सामने आती हैं। अत: इन समस्याओं के निदान के लिए कृषि तकनीकी ज्ञान का होना अति आवश्यक है।

ट्रैक्टरचालित सीड एवं फर्टिलाइजर ड्रिल

बैलचालित इंदिरा सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल

सघन खेती से हानियां

- सघन खेती में विभिन्न प्रकार के उच्च मूल्य वाले आदानों जैसे-रासायनिक खाद, रोगनाशक, कीटनाशक और शाकनाशियों का उपयोग किया जाता है। ये प्रदूषण को बढ़ावा देते हैं एवं मानव तथा पशुओं में विभिन्न प्रकार के रोगों के संक्रमण को बढ़ाते हैं।
- खेती में विभिन्न प्रकार के यंत्रों के उपयोग एव परंपरागत विधि से भूमि की तैयारी करने से जीवाश्म ईंधन के उपयोग में बढ़ोतरी हुई है। ये उत्पादन लागत एवं पर्यावरण प्रदूषण के साथ-साथ वैश्विक तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) की वृद्धि में सहायक हो रहे हैं। सघन खेती से मृदा अपरदन बढ़ रहा है एवं भूमि की उर्वराशक्ति क्षीण हो रही है।
- विभिन्न प्रकार के रसायनों के उपयोग से न केवल नाशीजीव नष्ट होते हैं, अपितु बहुत सारे लाभकारी जीव भी नष्ट हो जाते हैं। इससे जैव विविधता का ह्रास हो रहा है।

ट्रैक्टरचालित जीरों टिल एवं ड्रिल

सघन खेती अपनाने में मुख्य कठिनाइयां एवं समाधान

सफल सघन खेती के लिए आवश्यक है कि किसान इसके सिद्धांतों को अपनाएं। सघन खेती में एक बड़ी समस्या है भूमि को तैयार करना। पुरानी परंपरागत विधि में खेत की तैयारी तभी की जा सकती है, जब खेत

सारणी : शून्य भूपरिष्करण में किए गए शोध के परिणाम-एक नजर

क्र.सं.	शोधकर्ता	परिणाम	
1.	पंडित एवं सहयोगी (2010) 2005-06 में पंजाब एवं हरियाणा	परंपरागत विधि की तुलना में उत्पादन लागत में कुल बचत लाभ	2,011 रुपये प्रति हैक्टर (लगभग 6.5 प्रतिशत) 4,670 रुपये प्रति हैक्टर
2.	टी. के. दास (आई.ए.आर.आई.)	उत्पादन लागत में कमी	2,500-3,000 रुपये प्रति हैक्टर
		उपज में वृद्धि	(15-20 प्रतिशत)
3.	तेज राम बंजारा (2015) छत्तीसगढ़	परंपरागत विधि की तुलना में उत्पादन लागत में कमी परंपरागत विधि की तुलना में शुद्ध लाभ में वृद्धि	2,900 रुपये प्रति हैक्टर 11345 रुपये प्रति हैक्टर
4.	मिश्रा एवं सिंह के द्वारा 2001-05 की अवधि में जबलपुर में किए गए शोध के अनुसार सोयाबीन-अलसी सस्य क्रम में खरीफ में भूपरिष्करण की परंपरागत विधि के बाद रबी में अलसी की बुआई शून्य भूपरिष्करण से करने से अन्य भूपरिष्करण की तुलना में खरपतवारों के बीज बैंक एवं उगने वाले खरपतवारों की संख्या में भी कमी पाई गई।		

न्यूनतम भू-परिष्करण से उगायी गई कुसुम

न्यूनतम भूपरिष्करण से खेत से खेसारी

जुताई करने योग्य हो जाए। परंपरागत विधि में खेत तैयारी के लिए तीन-चार जुताई करने के लिए समय के साथ-साथ ईंधन की खपत एवं भूमि तैयारी का खर्च भी अधिक हो जाता है। साथ ही साथ पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि होती है तथा दूसरी फसल की बुआई देर से हो पाती है। इससे एक वर्ष में दो से अधिक फसल उगाने में कठिनाई होती है। इस समस्या का समाधान न्यूनतम एवं शून्य भूपरिष्करण से किया जा सकता है।

न्यूनतम भूपरिष्करण में खेत की जुताई एक-दो बार कर बीजों की बुआई की जाती है। इससे भूमि तैयारी में कम समय एवं खर्च लगता है और साथ-साथ दूसरी फसल की बुआई समय पर हो जाती है। शून्य भूपरिष्करण, न्यूनतम भूपरिष्करण का विकसित रूप है। इसमें खेत में केवल कतार में नालियों की खुदाई कर बीजों की बुआई के साथ-साथ उसी कतार में बीज के नीचे उर्वरक भी देते हैं। शून्य एवं न्यूनतम भूपरिष्करण को समन्वित रूप से संरक्षित भूपरिष्करण कहते हैं। यह विभिन्न तरीकों से प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण करती है। इससे मृदा सतह पर लगभग 30 प्रतिशत तक फसल अवशेष रहते हैं, जो मृदा एवं जल का संरक्षण करते हैं। साथ ही साथ खेती में लगने वाला समय, ईंधन, सिंचाई जल, पोषक तत्व, श्रम व ऊर्जा की बचत करते हैं। मृदा जीव (केंचुए, सूक्ष्मजीव आदि) में बढ़ोतरी एवं मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं

शून्य एवं न्यूनतम भूपरिष्करण के लाभ

- परंपरागत विधि की तुलना में इन तकनीकों में खेत की तैयारी हेतु कम ईंधन एवं श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस प्रकार ईंधन एवं श्रमिकों की बचत कर उत्पादन लागत में कमी के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण में भी कमी आती है।
- शून्य भूपरिष्करण से खेत की तैयारी का खर्च एवं समय कम लगने के साथ-साथ प्रथम फसल की कटाई के तुरंत बाद दूसरी फसल की बुआई की जा सकती है। इस प्रकार प्रति इकाई समय और प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक से अधिक फसल उगाकर उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।
- आजकल शून्य भूपरिष्करण के लिए विभिन्न प्रकार के यंत्र, जैसे सीड कम फर्टिलाइजर ड्रिल, जो बैल एवं ट्रैक्टर चालित हैं, विकसित कर लिए गये हैं। इनमें बीज बुआई के साथ-साथ उसी कतार में बीज के नीचे उर्वरक भी दे दिया जाता है, जिससे उर्वरक का भी सदुपयोग हो जाता है। फसलों की समय पर बुआई हो जाने से उपज में भी वृद्धि होती है।
- असिंचित क्षेत्रों में खरीफ फसलों की कटाई के बाद उपलब्ध नमी पर समय से शून्य या न्यूनतम भूपरिष्करण अपनाकर मसूर, चना, अलसी आदि फसलें उगाकर फसल सघनता में वृद्धि के साथ-साथ कृषक की आमदनी को बढ़ाया जा सकता है।
- शून्य व न्यूनतम भूपरिष्करण से खेत में वार्षिक खरपतवारों की सघनता में कमी आती है।
- सिंचित क्षेत्रों में 15-20 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत होती है।
- अवशेषों के न जलाने से मृदाक्षरण व वाष्पीकरण में कमी और मृदा तापमान पर नियंत्रण होता है। मृदा जैविक पदार्थों की बढ़ोतरी होती है।

शून्य भूपरिष्करण से उगायी गई टाऊ

शून्य भू-परिष्करण से तैयार अलसी

शून्य व न्यूनतम भू-परिष्करण से तोरिया

जैविक दशा में सुधार होता है। इसके अलावा रासायनिक आदानों की आवश्यकता में भी कमी आती है।

धान आधारित फसलचक्र में लंबी अवधि वाली धान की कटाई के बाद गेहूं की बुआई हेतु खेत की तैयारी परंपरागत विधि से करने पर 7-8 दिनों की देर हो जाती है। इससे गेहूं की वानस्पतिक बढ़वार हेतु कम समय मिल पाता है। परिपक्वता के समय फसल का उच्च तापमान होता है, जिससे उपज पर नकारात्मक प्रभाव होता है। ऐसी स्थिति में न्यूनतम या शून्य भूपरिष्करण को अपनाने से गेहूं की बुआई परंपरागत विधि की तुलना में 7-10 दिनों पहले हो जाती है और देर से बोने से फसल को होने वाली हानि कम हो जाती है। गेहूं की देर से बुआई करने पर उच्च तापमान के कारण लगभग 6.5 प्रतिशत तक उपज में कमी आती है। शून्य भूपरिष्करण अपनाकर समय से फसल की बुआई कर इस हानि को कम किया जा सकता है।

शून्य भूपरिष्करण हेतु मूलभूत आवश्यकताएं

- फसलों के अच्छे जमाव/अंकुरण हेतु उपयुक्त मृदा नमी का होना आवश्यक है।
- खेत में उपस्थित खरपतवारों के नियंत्रण हेतु पैराक्वाट अथवा ग्लाइफोसेट नामक शाकनाशी का एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से फसल बोने से 7-10 दिनों पहले खेत में छिड़काव करना चाहिए। ■

पुस्तक समीक्षा — बागवानी, औषधीय, सगंधीय एवं मसाला फसलों पर उपयोगी पुस्तक

'बागानी, औषधीय, सुगंधीय एवं मसाले वाली फसलों की उत्पादन प्रौद्योगिकी'
लेखक-श्री गंगा शरण सैनी
मूल्य-200.00 रुपये
प्रकाशक-रामा पब्लिशिंग हाउस,
मेरठ (उत्तर प्रदेश)

केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का निर्णय लिया गया है। इस बड़े उद्देश्य के लिए नीति निर्माण से लेकर किसान कल्याणकारी योजनाओं के कार्यान्वयन स्तर पर प्रयास किये जा रहे हैं। विज्ञान आधारित कृषि विधियों को भी प्रसारित किया जा रहा है, जिससे कृषि उत्पादकता का विविधीकरण हो तथा उत्पादकता बढ़े।

कृषि उत्पाद सीधे मानव पोषण से जुड़े हैं। दैनिक आहार के विविधीकरण द्वारा पोषण सुनिश्चित की जा सकती है। इस दिशा में प्रस्तुत पुस्तक '*बागानी, औषधीय, सुगंधीय एवं मसाले वाली फसलों की उत्पादन प्रौद्योगिकी*', लेखक के श्री गंगा शरण सैनी, द्वारा सराहनीय प्रयास किया गया है। श्री सैनी पूर्व अतिरिक्त सहायक निदेशक, कृषि एवं सिंचाई मंत्रालय, नई दिल्ली एवं निदेशक, कृषि औषधीय एवं सुगंध पादप विकास समिति, फरीदाबाद, हरियाणा सरीखे पदों पर कार्य कर चुके हैं।

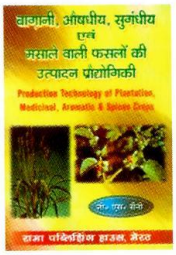

हमारे देश की मृदा एवं जलवायु में काफी विविधता पाई जाती है। इस आधार पर विभिन्न फलों, फूलों, मसालों तथा सगंधीय व मसाला फसलों की खेती की जा सकती है। ये फसलें व्यापारिक खेती के तहत आती हैं, जिससे किसानों को काफी मुनाफा मिलता है। इसके साथ ही इनका प्रयोग पोषण, चिकित्सा, प्रसाधन तथा गृह-सज्जा के उद्देश्य से व्यापक स्तर पर किया जाता है। प्रसंस्करण तथा निर्यात के माध्यम से ये फसलें किसानों के साथ ही राष्ट्र की आय में बढ़ोतरी प्रदान करती हैं। प्राकृतिक जीवनशैली के प्रति जनमानस का झुकाव बढ़ रहा है, जिससे इन फसलों की बाजार मांग बढ़ रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में बागवानी, औषधीय, सगंधीय तथा मसाला पर आधारित फसलों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। फसल के विभिन्न नाम, उपयोगिता, कृषि क्षेत्र या प्रदेश, किस्में, देखभाल, कृषि विधियों के साथ ही मृदा, उर्वरक तथा कीट व रोग प्रबंधन के बारे में उपयोगी जानकारियां प्रदान की गई हैं। उदाहरणस्वरूप, 'हरड़' की उपयोगिता के बारे में चर्चा करते हुए यह जानकारी दी गई है कि इसका प्रयोग देसी दवाइयों, रंगाई व चमड़े की रंगाई में किया जाता है। यह त्रिफला चूर्ण का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो पाचन क्रिया के साथ ही श्वसन की समस्याओं को भी दूर करता है। अदरक की चर्चा करते हुए बताया गया है कि इसकी खेती के लिए नमीयुक्त मौसम उपयुक्त होता है। सुरुचि, सुरभि तथा सुप्रभा इसकी उन्नत किस्में हैं।

कृषि स्नातक स्तर के नये पाठ्यक्रम के अनुरूप यह पुस्तक विशेष रूप से लाभकारी है। अध्यायों के अंत में अभ्यास हेतु प्रश्न विभिन्न परिक्षाओं के लिए उपयोगी हैं। विद्यार्थियों के साथ ही यह पुस्तक किसानों, सुधी पाठकों व अन्य हितधारकों के लिए भी पठनीय है।

प्रस्तुतिः विश्वनाथ सिंह